लिखते हुए कुछ ख्वाब से

अनघ शर्मा

लिखते हुए कुछ ख्वाब से

1." जब मोरे राजा पिया गए हैं बगीचा

भौंरा भनर-भनर होए मेरी गुइंयाँ"

लक-दक करके दामन से झाड़ो तो अनगिनत यादें झड़ जाती हैं। पर ये भी तो सच ही है कि इतनी आसानी से कभी कोई याद भी नहीं आता। दिली तौर पर याद करना और जहनी तौर पर याद करना दोनों अलग-अलग हैं, फिर भी कुछ यादें जहन और दिल के बीच कहीं अटकी रहती हैं। उसकी याद भी कुछ ऐसी ही थी, कहीं जहन और दिल के बीच सुस्त पड़ी। पर एक कोशिश तो करनी ही थी इसे निकालने की। सो ये तय हुआ कि यादों के तोशखाने में से एक रजाई निकाली जाएँ। फिर रात भर कोई याद ओढ़ो। पुरानी याद की धुँधली गंध रिसते-रिसते दिल के तहखाने में बैठ जाएगी। यूँ एक कहानी के जन्म की बात होगी... शर्त ये कि पैदाइश तक रजाई तोशखाने में वापस न रखी जाए।

उसकी तो पूरी कहानी ही शर्तों पे टिकी हुई थी।

पहली शर्त ये कि...

"उसे उसके असली नाम से बुलाया जाएँ न कि लोक-प्रचलित धीमरी से"

दूसरी ये कि...

"वो कहाँ से है ये कोई न जान पाए"

दूसरी शर्त तो जायज है। पर पहली, भला ये भी कोई बात हुई, असली नाम से पुकारें। उसके माँ-बाप या हमारी माँ को छोड़ इक्का-दुक्का ही कोई होगा जो उसका असली नाम जानता होगा। सभी तो उसे धीमरी कह कर बुलाते थे, अब इस नाम में क्या बुराई है भला?

बुराई है, यह बड़ा व्यक्ति-वाचक है। एक बार लो तो तमाम दुनिया जान जाए। सो असली नाम छद्म पहचान का काम करेगा। न लिखने वाले के मन पे ही कोई बोझ और न उसके ही मन पर।

कई बार बड़ी बहन से कहा तुम ही लिख मारो उसकी कहानी। किस्से-कहानियों में तुम्हारा हाथ सधा हुआ है। पूरा न्याय कर पाओगी उस के साथ, जैसे अनुभवी शल्य चिकित्सक के हाथों त्वचा को सिलने में टाँका इंच भर भी इधर-उधर नहीं होता, ठीक वैसे ही। सो हर बार की तरह वही एक जवाब। अरे! उस पर कहानी लिखना कोई डबल रोटी का टुकड़ा खाने जैसा है क्या? कि जैम नहीं तो न सही मार्मलेड लगा कर खा लेंगे। ये तो याद है, ठीक नमक की तरह, अगर स्वाद लेना हो तो खुद ही चखना पड़ता है।

बाकी मौका-बेमौका, वक्त-बेवक्त तुम्हें ठोंक-पीट कर दुरुस्त करते रहेंगे। फिर तुम्हारी यारी-दोस्ती भी थी उसके साथ सो तुम्ही लिखो।

अजी क्या खाक दोस्ती थी? असल नाम तक तो याद नहीं हमें उसका। करो, अब करो दुरुस्त?

अच्छा याद कर जब वो कोई काम बिगाड़ देती थी तो क्या कहती थीं अम्मा?

"एक काम भी ठीक से नहीं होता तुझसे, वही हाल है तेरा आँख के अंधे नाम नयनसुख। आँखें है या बुझते दिए, देख के भी नहीं चलती।"

ये अलग बात है कि नजर उसकी पाक-साफ 6/6 थी।

तो पहली शर्त के लिहाज से उसका नाम नैनतारा था।

उसकी जो सबसे स्पष्ट याद है, वही बड़ी धुँधली है। चेहरा-मोहरा, कद-काठी तो अब याद नहीं ढंग से, मगर कुछ याद है तो उसके कॉलर-बोन के गड्ढे। वो इतने बड़े और इतने गहरे थे कि मुझे हमेशा लगता था जैसे दो सूखे हुए तालाब हों, और कभी इनमें बेतवा का साफ-ठंडा पानी भरा रहता होगा। बेतवा इसलिए कि दूसरी शर्त के लिहाज से वो ऐसे इलाके से भाग कर आई थी, जो कहीं बेतवा किनारे था।

2.मुझे हमेशा यूँ ही लगता था की उसका मन बेतवा के ढाल सा होगा। हमेशा साफ, भरा और छलछलाता हुआ। चाहे कितना ही सूखा क्यों न आ जाएँ, पर मन के स्नेह का स्रोत हमेशा लबालब भरा हुआ रहेगा। पर लबालब भरे स्रोत से भी कई बार प्यासा ही लौटना पड़ता है।

उन दिनों दो बड़े बदलाव हो रहे थे मुझमें पहला तो होठों के ऊपर मूँछों की लकीर उभर रही थी, और दूसरा मन भीतर एक कहानीकार बेचैन सा करवटें ले रहा था। सो एक दिन उसी धुन में मैं उससे कह बैठा। मैं एक दिन तुम्हारी भी कहानी लिखूँगा धीमरी।

क्या तय हुआ था? पूर नाम, असली नाम छोटे लल्ला।

अच्छा ठीक है, नैनतारा। अब खुश?

कहानी लिखना क्या इतना आसान होता है छोटे लल्ला? बीस-पचीस बरस इंतजार करो, जब हमें भूल जाओ, हमारे कने दिमाग पे जोर डालना पड़े तब लिखना।

चलो ये भी तय रहा, सो अब न शक्ल याद न आवाज।

जाने-अनजाने जिंदगी की तरफ कभी कोई शर्त उछालो तो वो उसे एक ही बार में कैच कर लेती है, लपक लेती है, और फिर हर बीतते समय के साथ उसकी आवाज मंद पड़ जाती है पर एक आवाज कभी मंद नहीं पड़ी।

यूँ भी जिंदगी जो मसौदे तैयार करती है, खाका खींचती है। आदमी की आरजू उसे दो कौड़ी का मान सिरे से नकार देती है, धड़े से खारिज कर देती है। और जो चार सतरें चोरी-छुपे आरजू किसी लिफाफे में भेजती है, उसे जिंदगी बड़ी होशियारी से गायब कर देती है, या पूरा मौजूँ ही बदल देती है। आखिर में जीत जिंदगी की ही होती है।

उसकी जिंदगी के मसौदे उसकी आरजू से जीत गए।

ऐ धीमरी हमारे लड़के का कान बह रहा है कई दिन से?

जिजी बबूल के फूल सरसों के तेल में पका कर ठंडा तेल दिन में तीन बार डालो, एक दिन में कान बहना बंद।

अच्छा धीमरी और मेरे लड़के का कान दुख रहा है रात से।

लो बहन, किसी जच्चा का दूध डाल दो थोड़ा सा दर्द ये गया, वो गया।

धत! पगली

ऐसे तमाम नुस्खे उसकी आंटी में बाँधे रहते थे। बड़ी धीमी-धीमी आवाज में एक गीत गाया करती थी।

"भौंरा भनर-भनर होए मेरी गुइंयाँ

गजरा लहर-लहर होए मेरी गुइंयाँ

जब मोरे राजा पिया आए अटरिया

जियरा धुकुर-पुकुर होए मेरी गुइंयाँ "

ऐं छोटे लल्ला, क्या सारी कहानी हम पर ही लिखोगें? अपनी भी कुछ कहो।

अपनी क्या कहें, कुल जमा आठ सतरें लिखे तो हो गई पूरी कहानी।

ऐसे न बनेगी बात।

अच्छा सुनो। भरा-पूरा परिवार था, बाद में बाप जाते रहे। दिन बदले, थोड़े बिगड़े-थोड़े बने और रफ्ता-रफ्ता जिंदगी चल निकली।

ये तो कोई बात न हुई। कहानी में खास बातें होती हैं। कुछ खास हो तो बोलो छोटे लल्ला।

खास क्या? हाँ जब्त बहुत था हमें, होता भी क्यों न? माँ-बाप को खासा जब्त था। खूब गालियाँ सुनी दोनों ने घरवालों की। पिता ने तो मरने के बाद भी खूब सुनी। पैसे से कमजोर आदमी को सबसे ज्यादा मार अपने घर के अंदर ही सहनी पड़ती है। ये न समझना की हमें प्यार न मिला। बहुत मिला, टूट-टूट मिला पर कम लोगों से। बाकी लोगों से दिली नहीं कामचलाऊ सा मिला। सो यूँ कुछ वाकयों से कुछ लोग दिल से उतर गए। उतरे तो फिर कभी न चढ़े।

अच्छा छोड़ो हमारी। अपनी पर आओ, ये कहानी तुम्हारी है। बातें मत उलझाओ।

अच्छा ये बताओ तुम वहाँ से भाग क्यों आई?

बताते हैं सबर रखो। पहले वादा करो हमारी कहानी में एक किस्सा है, उसका जिक्र न करोगे।

पागल हो क्या? उसका जिक्र कैसे न होगा? सब उसी पर तो टिका है इस कहानी का। वैसे भी आदमी की फितरत होती है, इधर-उधर से जोड़-जाड़ अपनी समझ लायक कुछ ठीक-ठाक सा किस्सा बना ही लेता है।

तुम्हें मालूम ही नहीं, छोटी जिजी जानती हैं सब।

मैं पूछ लूँगा उनसे। समझी।

वो चुप बैठी मेरा चेहरा ताकती रही।

खट से मेरी नींद खुल गई। सपना ही तो था ये, आँख खुली और हवा हो गया।

वो वहाँ से क्यों भाग आई थी? ये हममें से कोई नहीं जानता था। पर उसे माँ से कई बार ये कहते सुना था।

"जानती हो जिजी कोई औरत दो बातों बिना अपने ठिए से नहीं भागती। अपने पेट और पीठ, या तो पेट की औलाद पर आँच होगी या अपनी पीठ भारी होगी।"

अब सोचता हूँ पीठ तो कभी भारी रही नहीं होगी उसकी। उसके भागने में जरूर पहले वाली बात ही होगी।

माँ से उसकी दोस्ती का किस्सा भी अजीब था। सालों पहले एक, दो-तीन बरस की बच्ची के साथ वो हमारी मौसी को आगरा बस-अड्डे पर मिली थी। सो वहाँ से पहले उनके घर और बाद में हमारे घर आ गई सदा के लिए, और हमारे जीवन में रच-बस गई जैसे गर्मियों की धूप और सर्दियों का कोहरा।

बाद में समय की दौड़ से कदम मिलाने के लिए हम भी बाहर चले गए। महीनों घर नहीं आते थे, जो कभी आते भी तो अपने-अपने में मश्गूल रहते थे।

एक बार कॉलेज की छुट्टियों में जब घर गया तो उसकी बेटी को न पा कर बड़ा आश्चर्य हुआ मुझे।

मीना कहाँ है? मैंने पूछा।

चली गई।

कहाँ?

अपने सासरे और कहाँ?

ऐं! पागल है क्या? ब्याह होता तो हमें पता न चलता क्या?

हमारे सासरे गई थी, वहीं हो गया।

कुल तेरह-चौदह की तो थी। इतनी छोटी का?

हमारे यहाँ इतने का ही होता है।

और हाँ! तेरा ही कौन सासरा बचा है दुनिया में?

उसने एक कातर दृष्टि से माँ को देखा और अंदर चली गई।

क्या हुआ इसे?

कुछ नहीं, बीमार थी कई दिनों से।

क्या बीमारी थी?

औरतों की बात है, तुम्हें क्या बताएँ। माँ ने कहा तो मैं चुप हो गया। यह भी भली बात थी की औरतों की बात में मेरा क्या काम? फिर यूँ भी एक छोटे से वाक्य में निहितार्थ क्या ढूँढ़ना?

पर सालों बाद वो खुद ही अधूरी बात का सूत्र थम गई।

...

ऐं, छोटे लल्ला रंगीन अखबार है?

अखबार, क्या करेगी?

कुछ रखना है।

क्या?

पेटीकोट।

नहीं है, मैं झूठ बोल गया। हालाँकि मेरे पलंग के गद्दे के नीचे खूब रंगीन अखबार रखे रहते थे। फिल्मों का बहुत शौक था मुझे, और अखबार में इतवार के इतवार एक रंगीन फिल्मी पन्ना आता था।

झूठ क्यों बोलते हो? गद्दे के नीचे रखे तो रहते हो। एक-दो दे दो।

ले मर! मैंने झटके से हाथ पटका। आह! हाथ झनझनाता हुआ पलंग के पाए से जा टकराया। ये भी सपना था, टूट गया। सपने बहुत आते थे मुझे कहानियों में या सपनों में कहानियाँ। सपने और कहानियाँ मुझे आते थे और उन्हें लिखने का शऊर बड़ी बहन को।

बड़ी दी उन दिनों मानवीय रिश्तों के तमाम आकलन करती कहानियाँ लिख रही थी। पर उसका आकलन करना बड़ा मुश्किल और पेचीदा काम था, ठीक वैसे ही जैसे बकरियों की सवारी पर कोई रेगिस्तान पार करना।

"कोटेड और अनकोटेड बातों के बीच की लकीर, सड़क के तारकोल में फँसे छोटे-छोटे पत्थरों की लिपि और किनारे तक जा कर डूबने वाले आसमान को पढ़ने वाले एक रोज बड़े अकेले रह जाते हैं।"

या फिर ये...

"पीछे उतर के देखो, तारीख में गहरे बहुत गहरे जा कर देखो दस, बीस, सौ, दो-सौ, चार-सौ बरस पीछे जा कर देखो कि एक शाहकार के पैदा होने के लिए और कितनों को पैदा होना पड़ता है। यकी न आए तो पूछो मुमताज से की एक ताजमहल के पैदा होने के लिए किस-किस को पैदा होना पड़ा था। एक शाहजहाँ को, एक दारा को, एक औरंगजेब को, एक शुजा को... और भी न जाने कौन-कौन?"

पर उसमें ऐसी कोई खूबी नहीं थी। न वो मुमताज थी न किसी शाहकार को पैदा कर सकती थी। न वो कथ्य-अकथ्य के बीच की पंक्ति ही पढ़ पाई थी। न जीवन भर चलने वाली सड़कों में फँसे पत्थरों की लिपि। न ही डूबते आसमानों के किनारे। फिर भी अंततः बहुत अकेली रह गई थी वो। बहुत पहले ये भी मुझे बहन ने ही बताया था कि वो धीरे-धीरे अपना मानसिक संतुलन खोती जा रही है।

3.अपने बचपन में किसी भूगोल की किताब में पढ़ा था कि दुनिया का सबसे बड़ा ज्वालामुखी विस्फोट इंडोनेशिया में हुआ था। इतना बड़ा की उसमें से निकले धुएँ के कारण अगले पूरे वर्ष धरती के एक बहुत बड़े हिस्से का तापमान सामान्य से कई गुना नीचे दर्ज किया गया था। मैं जब तक उसके पास रहा ये जान ही नहीं पाया कि कितना कुछ धधकता है उसके भीतर। अब सोचता हूँ कि अगर उसके भीतर का ज्वालामुखी फट गया होता तो कितने वर्षों के लिए हिम-युग आता। पर न ज्वालामुखी फटा, न ऐसा कुछ हुआ। आखिरी बार भी बहन ही ने खबर दी थी उसके बारे में।

बड़ी बदल गई है वो, अजब बुढ़ापा झाँकता है उसके चेहरे से अब।

बूढी तो अपनी माँ भी लगने लगी हैं, याद है कितनी खूबसूरत थीं हमारे बचपन में, मैंने कहा।

ब्यूटी इज द कर्स। वो बोली।

फोन रखने के बाद मैं देर तक उसी की याद में डूबा रहा, पर सिवाय एक धुँधले के कुछ नहीं दिखा। वैसे भी जब से बंगलौर शिफ्ट हुआ हूँ, घर जाना ही नहीं हो पाया। पिछले

दस सालों में तो एक बार भी नहीं जा पाया हूँ। रात की शांत फिजा बार-बार खुद में यही दोहरा रही थी कि हर इमारत को एक रोज खंडहर में बदलना ही होता है।

"जानते नहीं खूबसूरती की जिल्द पर सबसे पहले जंग लगती है। फिर टुकड़ा-टुकड़ा, पर्त-पर्त ये जिल्द खुद ही गल जाती है... वर्तमान की जो भी इमारत अपने अतीत में जितनी ज्यादा खूबसूरत रही होगी भविष्य में उसके खंडहर बन्ने की आशंका उतनी ही प्रबल होगी। वैसे भी खूबसूरत चेहरों को बदलने में वक्त ही कहा लगता है? बस एक वक्फा...

कहाँ तक पहुँचे छोटे लल्ला?

अजब है तू भी, चित्त-पट्ट का मामला थोड़े है। सिक्का उछालूँ, थामूँ, देखूँ और फैसला हो गया।

तुम तो बहुत बखत बरत रहे हो।

तो क्या किस्सा-कोताही कर दूँ?

तुम से अच्छा तो छोटी जिजी कह-लिख देती।

तो फिर उसी के पास जा। हट! परे।

वो उदासी में डूबा हँसता चेहरा ले कर चली गई। पर जाते-जाते एक भेद पकड़ा गई कि सबसे पहले हँसते चेहरों की हँसी उतर कर देखनी चाहिए। आजकल उदासी बड़ी चालाक हो गई है। अगर खुश रहना है तो छुपी उदासी को निकाल फेंकना होगा। हाँ पता है उदासी और डर बड़े पक्के होते हैं, एक बार पकड़ लें तो फिर छोड़ते नहीं। शांत बहते पानी में ज्यों अचानक पहाड़ियाँ निकल आए, ऐसे मन पर कब्जा कर लेते हैं ये। कई बार तो यह भय जीवन की जिजीविषा से भी बड़े हो जाते हैं। फिर भी जीवन जीना ही है आखिर तक। जीवन की चाह को लगातार ईंधन देना पड़ता है, हर हाल में। जीवन की राहें आसान नहीं होतीं, किसी के लिए भी नहीं।

उसके जीवन की राह भी बड़ी कठिन थी, उसके नियंत्रण से परे। वो अगढ़-अनपढ़ भले ही थी पर बड़ी समझदार थी। वो जानती थी कि राह अगर टेढ़ी-मेढ़ी, पथरीली हो तो भी एक बार को कट ही जाएगी। पर वह सपाट राह जो काई से चिकनी हुई, शैवालों से पटी पड़ी हो, उसका क्या? और अगर ऐसी फिसलन भरी डगर पर मुँह बके बल गिरना

निश्चित हो तो क्या नंगे पाँव खड़े हो संतुलन बनाए रखने की चेष्टा करना या चप्पल पहन तुरंत ही गिर पड़ना।

थोड़ी देर यूँ ही बेतरतीब ख्यालों में उलझे रहने के बाद मैंने बहुत दिन घर से बाहर रहने के कारण फोन में जमा हुए वॉइस-मेसेज सुनना शुरू कर दिए। उनमें से एक बड़ी बहन का भी था तो कुछ वक्त बाद उन्हें ही फोन मिला दिया।

कैसी हो?

ठीक हूँ। तू कैसा है?

मैं भी ठीक हूँ।

तेरी आवाज थकी हुई सी कैसी लग रही है?

बस जरा-बहुत थकावट है।

बड़ी रात गए फोन किया तूने? सब खैरियत?

हाँ, आज ही लौटा हूँ हैदराबाद से, तुम्हारा वॉइस-मेसेज था फोन में तो सोचा तुम से ही बात कर लूँ।

और क्या चल रहा है?

कुछ नहीं, अच्छा तुमसे एक बात पूछनी थी।

क्या?

मुझे आजकल धीमरी बहुत दिखती है सपनों में। तुम जानती हो उसके नीम-पागल होने की क्या वजह थी।

सोशल-इंजस्टिस, सामाजिक अन्याय और हम सब में छुपा हुआ सबसे बड़ा भय। तब जमाना आज के जैसे नहीं था कि एक कैंडल-मार्च निकालो लोग साथ जुड़ जाएँगे, भले ही धीरे-धीरे ही सही। दबंगों की दबंगई से तो आज भी मिडिल-क्लास और छोटा तबका डरता है, तब की तो बात ही छोड़ो। छोटे शहरों में तथाकथित बदलाव की गुंजाइश ही कहाँ होती थी तब?

छोटे शहर चुस्त-ट्राउजर्स की तरह होते हैं। धड़ से नीचे घुटनों तक इतने चुस्त की हवा भी इक हल्लर नहीं निकल सकती। घुटनों से नीचे जिस हिस्से को थोड़ी आजादी होती है वो हिस्सा मध्य-वर्ग का है, जो चार पैसे जोड़ मौका लगते ही अपने बच्चों को बड़े शहरों की तरफ निकल देते हैं ताकि उनका भविष्य सुरक्षित रह पाए, पर सबसे ज्यादा मार खाता है हमारे यहाँ का निचला तबका। ढकने को उसके पास कुछ होता नहीं नंगा वो चाह कर भी नहीं हो सकता। बंद पड़े-पड़े ख्यालों में बड़े-सोर पैदा हो जाते हैं, कुंठाएँ पनप जाती हैं, जहन कुंद पड़ जाते हैं।

लूट-डकैती दबंग डालते हैं और पुलिस पकड़ के ले जाती है गरीब घरों के बच्चों को। जिन्हें ये सिस्टम धीरे-धीरे पेशेवर मुजरिम में ढाल देता है। कुछ सालों में ये बच्चे हाव-भाव, चाल-ढाल, शक्ल-सूरत, रंग-रूप में एक जैसे हो जाते हैं। हाँ ये सच है अब समय बदला है और समाज के बड़े प्रोटेगोनिस्ट इन्हीं तबकों से निकलते हैं।

अरे! छोड़ो ये बातें, उसकी बताओ।

ऐन होली से एक रात पहले दबंगों के लड़के खींच कर ले गए थे इसको। रात भर बिना कपड़ों के नचाया इसे। कपड़ों के बदले सौदा तय हुआ मीना का। बाद में खाली पेटीकोट थमा के भेज दिया इसे।

और कोई बोल नहीं मुहल्ले भर से?

सब सोते रहते हैं ऐसे मौकों पर।

और मीना?

मीना कब लौटी, किस हाल में लौटी? किसी ने नहीं देखा। जब अम्मा ही महीनों बाद जान पाईं तो कोई और क्या जानता?

मुझे क्यों नहीं बताया**?** मैं लगभग रुआँसा सा बोल।

तुम बंगलौर थे उस वक्त कॉलेज में। हमें खुद ही बहुत देर से पता चला तो तुम्हें क्या बताते। बाद में सालों बीतने पर लगा कि अब बताने का क्या औचित्य? बाद में अम्मा ही राजघाट जा कर उसका सब सामान बहा आई थी। पर कुछ और भेद भी छुपा था उनके मन में जिसे कोई और नहीं जान पाया कभी भी, लोग अक्सर सच छुपा ही जाते हैं। एक बात पता है तुझे, लाल, नीली, पीली, चमकीली, काली, दुनिया में मौजूद और भी जितनी स्याहियाँ हैं उन सब का इस्तेमाल करके किस्से-कहानियाँ लिखने वाले

जानते हैं कि वो पूरा सच नहीं लिख रहे हैं। चाहे कल्पना का ही नाम क्यों न दें उसे पर अधूरी ही है हर बात। भले ही कागज पर लिखी जाएँ या रेशम पर या फिर पत्थर पर ही उकेरी जाएँ, हर कहानी सच पर एक कलई चढ़ाए रखती है। चाहे मैं लिखूँ या कोई और पर पूरा या पूरे जैसा कोई कभी कुछ लिख ही नहीं पाता। सच हमेशा कहानियों में नए-नए कपड़े पहने टुकड़े-टुकड़े में ही आ पाता है। पूरा सच तो अनगढ़, उलझा, लश्तम-पश्तम ताले लगे मन में कहीं पड़ा हुआ साँस लेता रहता है। मजाल है किसी की जो अपने ही मन का ताला खोल सच टटोल सके।

फोन काटने के बाद मैं सन्न, अवाक बैठा रह गया। क्या था ये जो मुझे अभी पता चला? कोई डरावना सच या किसी फिक्शन का हिस्सा जो पढ़ा नहीं बस सुना भर हो। किस दर्जा ट्रॉमा होगा। कैसी भयानक सौदेबाजी होगी वो? जिस्म के बदले जिस्म उफ! मैं पक्षघात के मरीज सा थम के रह गया। कोई चिकोटी काटे तो भी महसूस न हो।

देखा छोटे लल्ला मैं कहती थी न छोटी जिजी तुम से अच्छा लिख लेती हैं। कैसी सुघराई से सब बता गई तुम्हें। घबरा के इधर-उधर देखा मैंने, कमरे में कोई नहीं था। डर के मारे कहानी के अध-लिखे पन्ने फाड़ कर फ्लश-आउट कर दिए मैंने। शांत रात में सिर्फ हवाएँ बह रही थी, मैंने गौर से कान लगा कर सुना। वो हवाएँ एक दर्द-भरा गीत गा रही थी।

"मोरी पतुरिया माई गंगे बहा देव

मैं तो चली परदेस मोरे लाल..."